श्री स्वामी शङ्कराचार्य कृत

इसकी टीका वेदान्तविद् श्रीयुत रायबहादुर बाबू
जालिमसिंह पोस्टमास्टर जनरल रियासत
ग्वालियर ने सरल मध्यदेशी भाषा में
सहित पदच्छेद अन्वय पदार्थ और
भावार्थ के किया ॥

प्रथम बार

लखनऊ

सुपरिटेंडेंट बाबू मनोहरलाल भार्गव बी.ए., के प्रबन्ध से

मुंशी नवलकिशोर सी. आई. ई., के छापेखाने में छपी
सन १९१३ ई० ॥

परापूजा सटीक ॥

प्रश्न ॥ संसार में जितने कर्मीलोकहैं वह कहते हैं कि ईश्वर मूर्त्तिमान् है, और ऊपर के किसी लोक में रहता है, उसकी मूर्त्ति को बनाकरके उसकी पूजा करनी उचित है, और उसकी मूर्त्ति को स्नान कराना, वस्त्र पहराना, आसन देना, पुष्प चढ़ाना, धूप दीप करना, भोग लगाना; आरती उतारना, और प्रदक्षिणा करना यही उसकी पूजा है, और इसी से वह ईश्वर प्रसन्न होता है, ऐसा जो उन का कथन है सो ठीक है या नहीं ॥ **उत्तर** ॥ ज्ञानियों के लिये यह ठीक नहीं क्योंकि ईश्वर मूर्त्तिमान् नहीं, जो ईश्वर को मूर्त्तिमान् मानते हैं, वह ईश्वर के स्वरूप को नहीं जानते हैं, और वेद शास्त्र के तात्पर्य्य को भी नहीं जानते हैं, जो मूर्त्तिमान् पदार्थ होता है, सो परिच्छिन्न अर्थात् एकदेशमें रहनेवाला होता है, और उत्पत्ति नाशवाला भी होता है, इस वास्ते ईश्वर मूर्त्तिमान् नहीं है, यदि ईश्वर को मूर्त्तिमान् मानोगे तो वह भी परिच्छिन्न एकदेशी होजावेगा, और ऐसा मानना वेदशास्त्रविरुद्ध है, यदि ईश्वर देहधारी और ऊपर के किसी लोक में बैठनेवाला माना जावेगा तब वह देहधारी जीव साबित होगा, और देहधारी होने से वह जन्म मरणवाला भी होगा, और अल्पज्ञ भी होगा, क्योंकि देहधारी कदापि सर्वज्ञ नहीं होसक्ता है, इसवास्ते ईश्वर देहधारी और मूर्त्तिमान् नहीं है, किन्तु ईश्वर श्रुतियों से निराकार निरवयवही सावित होता है, जब ईश्वर मूर्त्तिमान् नहीं तब उसकी मूर्त्ति पाषाणादि की कैसे होसक्ती है, और फिर तिस

मूर्त्ति की पूजा कैसे होसक्ती है, जब ईश्वर की मूर्त्ति किसी युक्ति प्रमाण से साबित नहीं होसक्ती है, तब फिर उसकी मूर्त्ति को बना करके तिसकी पूजा करनी किसी तरह से साबित नहीं होती है, इसीपर श्रीस्वामिशंकराचार्य्यजीने जो ईश्वरसम्बन्धी स्तोत्र को कहा है उसीको और उसके अर्थ को दिखाते हैं ॥

मूलम्।

आनन्देसच्चिदानन्दे निर्विकल्पैकरूपिणि ॥
स्थितेऽद्वितीयेभावेवै कथंपूजाविधीयते ॥ १ ॥

पदच्छेदः।

आनन्दे सच्चिदानन्दे निर्विकल्पैकरूपिणि स्थिते अद्वितीये भावे वै कथम् पूजा विधीयते ॥

अन्वयः।	पदार्थः।
आनन्दे	आनंदरूप है जो
सच्चिदानन्दे	सत्यचिद्आनंद है जो
निर्विकल्पैकरूपिणि	विकल्पसे रहित है जो
स्थिते	स्थित है जो
अद्वितीये	अद्वैत है जो
भावे	भावरूप है जो उसमें
वै	निश्चयकरके
कथम्	किसप्रकार से
पूजाविधीयते	पूजाकाविधान होसक्ता है

भावार्थः।

प्रश्न ॥ वह परमात्मा ईश्वर कैसा है ॥ उत्तर ॥ आनन्दस्वरूप है, अर्थात् उसमें तीनोंकाल दुःख का लेशमात्र नहीं है, इसी से वह सत्य चिद् आनन्दरूप है, और उस में जगत् की

उत्पत्ति आदिक की कल्पना भी किसी प्रकार से नहीं होसक्ती है, क्योंकि वह भावरूप होकरके संपूर्ण ब्रह्माण्ड में स्थित है, वह अद्वैत है अर्थात् द्वैतरूपी प्रपंच उस में लेशमात्र भी नहीं है, दूसरा उस के तुल्य सच्चिदानंदरूप ईश्वर और नहीं है, क्योंकि संपूर्ण ब्रह्माण्ड भर में निराकार निरवयव ईश्वर एकही रहसक्ता है, एकदेश में दो निराकार रहने का कोई दृष्टान्त नहीं मिलता है, जब निराकार निरवयव की मूर्त्ति किसी प्रकार से नहीं बन सक्ती है, तब तिसकी पूजा कैसे होसक्ती है, किन्तु कदापि नहीं होसक्ती है ॥ **प्रश्न** ॥ जब शरीर में नख से लेकरके शिखा पर्यन्त जीवात्मा व्यापक है तब यह शरीर जीवात्मा का ही है, और हस्तपाद आदिक जितने अवयव हैं यह सब उसी के हैं, और शरीर के किसी अवयव की भी पूजा करने से उसी की पूजा है, क्योंकि शरीर के अवयवों को सुख मिलने से उसके भीतर वाले जीवआत्मा को भी सुख मिलता है, और जैसे शरीर और शरीर के अवयवों के पूजने से जीवात्मा की पूजा होती है तैसे ब्रह्माण्ड के अंदर जितनी मूर्त्तियें हैं उनमें से किसी एक के पूजने से उसी व्यापक ईश्वर की मूर्त्ति की पूजा है, क्योंकि ईश्वर सब मूर्त्तियों के भीतर व्यापक है, और न इसमें कोई दोष प्रतीत होता है ॥ **उत्तर** ॥ जीवात्मा का दृष्टांत नहीं बनता है, क्योंकि जीवात्मा का शरीर के साथ तादात्म्य अध्यास है, इसी से देह में सुख दुःख होने से वह अपने में सुख दुःख मानता है, ईश्वरात्मा का ब्रह्माण्ड के साथ तादात्म्याध्यास नहीं है, इसी वास्ते ब्रह्माण्ड में खेद होने से ईश्वर को खेद नहीं होता है, फिर जीव के शरीर के प्रत्येक अवयव में अध्यास है, इस वास्ते प्रत्येक अवयव की

पूजा से और हानी से वह अपनी पूजा और हानी को मानता है, और सुखी दुःखी होता है, ईश्वरात्मा का जगत् के किसी भी पदार्थ के साथ या मूर्त्ति के साथ अध्यास नहीं है इसी वास्ते पदार्थों की हानी से और पूजा से वह अपनी हानी और पूजा नहीं मानता है, फिर जीवात्मा कर्मों का कर्त्ता और उन के फल का भोक्ता है, ईश्वरात्मा ऐसा नहीं है, फिर जीवात्मा कर्मों के अनुसार कभी मनुष्ययोनी में, और कभी पशु पक्षी आदिक योनियों में जन्मता मरता है, ईश्वरात्मा ऐसा नहीं है, इतनाही जीवात्मा और ईश्वरात्मा में भेद है, इस वास्ते ईश्वरात्मा देहादिकों से और जन्म मरण से रहित है, एकरस ज्यों का त्यों अपने स्वरूप में स्थित है, इस वास्ते जीवात्मा का दृष्टांत नहीं बनता है, जो जीव मुक्त होजाते हैं, वह भी शरीरादिकों से रहित होकर ईश्वर में मिलजाते हैं, और उन का भी फिर जन्म मरण किसी प्रकार से भी नहीं होता है, और न उनकी मूर्त्ति को कोई बनासक्ता है, तब फिर जो नित्य मुक्त ईश्वर है, तिस व्यापक चेतन की मूर्त्ति को कैसे कोई बनासक्ता है, जिसको कोई देखे होता है वही उस की मूर्त्ति को बनासक्ता है, जिसको किसी ने कभी नहीं देखा है, उसकी मूर्त्ति को कोई भी बना नहीं सक्ता है, फिर जो किसी भी इन्द्रिय का विषय नहीं है तिसकी मूर्त्ति कैसे बनसक्ती है, और निराकार चेतन कभी भी साकार नहीं बनसक्ता है, क्योंकि इस में भी कोई दृष्टांत नहीं मिलता है, और साकार कभी भी निराकार नहीं होसक्ता है, क्योंकि इसमें भी कोई दृष्टांत नहीं मिलता है, इसी से निराकार की पूजा किसी प्रकार से भी नहीं बनती है, और इसीलिये उसका विधान भी नहीं होसक्ता है, वेद में ईश्वर के स्वरूप

को इसप्रकार दिखलाया है ॥ सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म ॥ सब से महान् ईश्वर सत्यरूप है, ज्ञानस्वरूप है, अनन्तस्वरूप है ॥ एकोदेवः सर्वभूतेषुगूढः ॥ वह परमात्मा एक है, और संपूर्ण भूतों में छिपा है, सर्वव्यापी है, साक्षी है, चेतन है, और निर्गुण है ॥ दिव्योह्यमूर्तः पुरुषः सबाह्याभ्यन्तरोह्यजः ॥ वह परमेश्वर दिव्य है, अर्थात् अलौकिक है, और मूर्त्ति से रहित है, और सर्वमें पूर्ण है, और सब के बाहर और भीतर स्थित है, अज है, याने जन्म से रहित है, इस प्रकार अनेक श्रुतिवाक्य तिस परमात्मा के स्वरूप को निराकार और मूर्त्ति से रहित बताते हैं, तब फिर ऐसे परमेश्वर की लौकिक पूजा कैसे बनसक्ती है श्रीशंकरस्वामी कहते हैं ॥ १ ॥

मूलम्।

पूर्णस्यावाहनंकुत्र सर्वाधारस्यचासनम् ॥
स्वच्छस्यपाद्यमर्घंच शुद्धस्याचमनंकुतः ॥ २ ॥

पदच्छेदः।

पूर्णस्य आवाहनम् कुत्र सर्वाधारस्य च आसनम् स्वच्छस्य पाद्यम् अर्घम् च शुद्धस्य च आचमनम् कुतः ॥

अन्वयः।	पदार्थः।	अन्वयः।	पदार्थः।
पूर्णस्य	=व्यापक का	सर्वाधारस्य	=सर्वजगत् के आधार का
आवाहनम्	=आवाहन	आसनम्	=आसन
कुत्र	=कहां	+ कुत्र	=कहां
च	=और		

स्वच्छस्य=स्वच्छ का	+ च=और
पाद्यम्=पांवकाधुलाना	शुद्धस्य=शुद्ध का
च=और	आचमनम्=आचमन
अर्घ्यम्=अर्घ का देना	
+ कुत्र=कहां	कुतः=कहां

भावार्थः।

जो किसी एक देश में रहता है या परिच्छिन्न देहधारी होता है, उसी का आवाहन होसक्ता है, और जो सर्वत्र पूर्ण है, सर्वव्यापी है, हर जगह में पहलेही से विद्यमान है, तिसका आवाहन कैसे होसक्ता है, अर्थात् किसी तरह से भी नहीं होसक्ता है, और जो आपही संपूर्ण ब्रह्माण्ड का आधार है तिसके बैठने के लिये आसन का देना कहां बनसक्ता है, आसन तो देहधारी एकदेशी के बैठने के लिये दिया जाता है, जो देह से रहित है, अतिसूक्ष्म है, व्यापक है, तिसके बैठने के लिये आसन का देना नहीं बनता है, स्मृति भी इसी वार्ता को कहती है ॥ सर्वाधारो निराधारः सर्वपोषक ईश्वरः ॥ प्राणादिप्रेरकत्वेन जीवने हेतुरेव च ॥ १ ॥ वह ईश्वर संपूर्ण जगत् का आधार है, और आप निराधार है, और सर्वका पालन करनेवाला है, और सर्व के प्राणों का प्रेरक भी है, और वही सर्व के जीवन का कारण भी है ॥ १ ॥ इसीसे उसको आसन का देना नहीं बनता है, जिस के हाथ पांव पहले मैले होते हैं, उसी के हाथ पांव साफ करने के वास्ते जल दियाजाता है, जो हाथ पांव से रहित है, स्वतः ही स्वच्छ है उस को हाथ पांव के स्वच्छ करने के वास्ते पाद्य और अर्घ का देना कैसे बनसक्ता है, फिर जिसके खाने से मुख जूठा होजाता है, उस

के मुख के शुद्ध करने के वास्ते आचमन के लिये जल दियाजाता है, जो मुख से रहित है, और नित्य शुद्ध भी है, तिसके आचमन के लिये जल का देना किसी तरह से नहीं बनता है, इसी में प्रमाण वाक्यों को भी दिखाते हैं ॥ केनोपनिषदि ॥ यद्वाचानभ्युदितंयेनवागभ्युद्यते ॥ तदेवब्रह्मत्वंविद्धिनेदंयदिदमुपासते ॥ १ ॥ जो ब्रह्मवाणी करके कथन नहीं किया जाता है, और जिस की सत्ता करके वाणी अपने वचनरूपी व्यवहार को करती है वही ब्रह्म है, जिस मूर्त्ति की तुम उपासना करते हो, वह ब्रह्म नहीं है ॥ १ ॥ पुराणवाक्य ॥ अधमाःप्रतिमापूजास्तोत्रजाप्यंचमध्यमाः ॥ उत्तमा निगमःपूजासोहंपूजामहात्मनः ॥ १ ॥ अधम जो मूर्ख हैं उनके लिये प्रतिमा पूजा है, स्तोत्रों का पाठ करना या किसी मंत्र का जाप करना मध्यमों के लिये है, और उत्तमों के लिये वेद का पाठही पूजा है, और सोहं का जाप महात्माओं की पूजा है ॥ १ ॥ तीर्थेषुपशुयज्ञेषुकाष्ठपाषाणमृन्मये ॥ प्रतिमायांमनोयेषां तेनरःमूढचेतसः ॥ २ ॥ तीर्थों में और पशुवों के यज्ञों में और मट्टी पत्थर की मूर्त्तियों में जिन पुरुषों का मन लगता है वह पुरुष अतिमूढ़ कहे जाते हैं ॥ कपिलगीता ॥ पाषाणैरालयंवध्वा देवःपाषाणएवच ॥ ब्रूहिपण्डितदेवस्तुकस्मिन्स्थानेसतिष्ठति ॥ १ ॥ स्वगृहेपायसंत्यक्त्वा भिक्षामिच्छातिदुर्मतिः ॥ शिलामृतदारुचित्रेषु देवताबुद्धिकल्पिता ॥ २ ॥ पत्थरों का मंदिर बनाया और फिर पत्थर का ही तिसमें देवता भी स्थापन किया कहो पण्डित तुम्हारा देवता इस मंदिर में कहांपर रहता है ॥ १ ॥ जैसेकोई अपने घर में पकीहुई तस्मै का त्याग करके भिक्षा मांगता है, तैसेही देह के भीतर ईश्वर चेतन का त्याग करके मट्टी और पत्थरों और लकड़ियों में जो देवताबुद्धि को करते

हैं सो मूर्ख हैं ॥ २ ॥ भागवत ॥ यस्यात्मबुद्धिःकुणपेत्रिधातुके,स्वधीःकलत्रादिषुभौमइज्यधीः ॥ यत्तीर्थबुद्धिःसलिलेनकर्हिचिज्जनेष्वभिज्ञेषुसएवगोखरः ॥ ३ ॥ जिस पुरुष की तीनों धातुवोंकी बनी हुई मूर्त्तियोंमें आत्मबुद्धि है, याने यह मूर्त्ति ही ईश्वर है, और स्त्री पुत्रादिकों में तथा मट्टी की मूर्त्तियों में पूज्यबुद्धि है, और जल में जिसकी तीर्थबुद्धि है, और विद्वान् पुरुषों में जिसकी पूज्यबुद्धि नहींहै, सो पुरुष बैल है, या गर्दभ है ॥ ३ ॥ हे सौम्य ! चेतन ईश्वरकी मूर्त्ति नहीं है, इस वास्ते उसकी मूर्त्ति की पूजा भी नहीं बनती है, श्रीशंकराचार्यजी कहते हैं ॥ २ ॥

मूलम् ।

निर्मलस्यकुतःस्नानं वस्त्रंविश्वोदरस्यच ॥
निरालम्बस्योपवीतं रम्यस्याभरणंकुतः ॥ ३ ॥

पदच्छेदः ।

निर्मलस्य कुतः स्नानम् वस्त्रम् विश्वोदरस्य च
निरालम्बस्य उपवीतम् रम्यस्य आभरणम् कुतः ॥

अन्वयः ।	पदार्थः ।	अन्वयः ।	पदार्थः ।
निर्मलस्य	निर्मल का	कुतः	कहां
स्नानम्	स्नान	निरालम्बस्य	निरालम्ब का
कुतः	कहां	उपवीतम्	उपवीत
च	और	कुतः	कहां
विश्वोदरस्य	संपूर्ण विश्व है उदरमें जिसके तिसको	रम्यस्य	सुन्दरता को
वस्त्रम्	वस्त्र	आभरणम्	भूषण
		कुतः	कहां

भावार्थः।

वह परमात्मा अतिनिर्मल है, अर्थात् अविद्यारूपी मल से रहित है, इसवास्ते उसको स्नान कराना नहीं बनता है क्योंकि जो पहले मैला होता है उसके मैल के उतारने के वास्ते जल से उसको स्नान कराया जाता है, जो अतिसूक्ष्म है, जिस तक मलादिक पहुँचही नहीं सक्ते हैं तिस का स्नान कराना कैसे होसक्ता है, परिच्छिन्न में वस्त्र का ओढ़ना बनता है, जिसके कि उदरमें संपूर्ण जगत् है उसको वस्त्रका ओढ़ाना या पहराना कैसे होसक्ता है, यज्ञोपवीत भी उसी को पहराया जाता है जो वर्णाश्रम का अभिमानी होता है, जिसमें वर्णाश्रमादिक तीनोंकाल नहीं हैं तिसको यज्ञोपवीत का पहराना कैसे होसक्ता है, जो आलम्ब के सहित होता है उसी को यज्ञोपवीत पहराया जाता है, जो निरालम्ब है उस को यज्ञोपवीत का पहराना कैसे बनसक्ता है, और जिसको शरीर का अभिमान होता है वही द्विज बनने के वास्ते यज्ञोपवीत को पहरता है, परमात्मा तो ऐसा है नहीं इस वास्ते उसको यज्ञोपवीत की आवश्यकता नहीं, जो कुरूपाकार होता है उसके सुन्दर स्वरूप बनाने के वास्ते भूषण पहराये जाते हैं, पर जो आकार से रहित निराकार है उस में भूषण का पहराना कहां बनसक्ता है ॥ ३ ॥

मूलम्।

निर्लेपस्यकुतोगन्धं पुष्पंनिर्वासनस्य च ॥
निर्गन्धस्यकुतोधूपं स्वप्रकाशस्यदीपकम्॥ ४ ॥

पदच्छेदः।

निर्लेपस्य कुतः गन्धम् पुष्पम् निर्वासनस्य च

निर्गन्धस्य कुतः धूपम् स्वप्रकाशस्य दीपकम् ॥

अन्वयः ।	पदार्थः ।	अन्वयः ।	पदार्थः ।
निर्लेपस्य	निर्लेपईश्वर को	निर्गन्धस्य	गन्धि से रहित को
गन्धम्	सुगन्धी	धूपम्	धूप
कुतः	कहां	कुतः	कहां
च	और	स्वप्रकाशस्य	स्वप्रकाश को
निर्वासनस्य	वासना से रहित को	दीपकम्	दीपक
पुष्पम्	पुष्प	कुतः	कहां
कुतः	कहां		

भावार्थः ।

जिसका सम्बन्ध पदार्थों के साथ होता है उसी को सुगन्धी दीजाती है, और जिसके घ्राणेन्द्रिय होता है उसी को अच्छी या बुरी गन्ध आती है, जिसके घ्राणेन्द्रियही नहीं है तिसको कोई गन्ध कैसे देसक्ता है, जब ईश्वर के घ्राणेन्द्रियही नहीं तब उस को गन्ध का देना कैसे होसक्ता है, जिसको पुष्पों की वासना होती है उसी को पुष्प दिये जाते हैं, वासना से रहित ईश्वर को कोई कैसे पुष्प देसक्ता है, और जो गन्धि की इच्छा से रहित है तिस को गन्ध कोई कैसे देसक्ता है, फिर जो कोई अंधेरे में रहता है तिसीको चांदनी की जरूरत होती है और जो आपही स्वप्रकाश चांदनारूप है तिसको दीपक की जरूरत कहां ॥ वह परमेश्वर निराकार, निरवयव, सब में पूर्ण, घ्राणइन्द्रियों से रहित, प्रकाश-

स्वरूप है, उसको गन्ध धूप और पुष्पों का देना और दीपक दिखाना नहीं बनता है, क्योंकि वह अतिसूक्ष्म है, श्रुति—सूक्ष्माचतत्सूक्ष्मतरं विभाति ॥ वह परमात्मा सूक्ष्म से भी अतिसूक्ष्म है और सब में प्रकाशमान होरहा है, और जिसके प्रकाश करके सूर्य्य चन्द्र तारे सहित सब जगत् प्रकाश कररहे हैं उसको कौन प्रकाश करसक्ता है ॥ ४ ॥

मूलम्।

नित्यतृप्तस्यनैवेद्यं निष्कामस्य फलं कुतः ॥
ताम्बूलंचविभोःकुत्रनित्यानन्दस्यदक्षिणा ॥ ५ ॥

पदच्छेदः।

नित्यतृप्तस्य नैवेद्यम् निष्कामस्य फलम् कुतः ताम्बूलम् च विभोः कुत्र नित्यानन्दस्य दक्षिणा ॥

अन्वयः।	पदार्थः।	अन्वयः।	पदार्थः।
नित्यतृप्तस्य	नित्यही तृप्त को	विभोः	व्यापक को यानी आकार रहित को
नैवेद्यम्	नैवेद्यलगाना	ताम्बूलम्	ताम्बूल
कुतः	कहां	कुत्र	कहां
निष्कामस्य	कामना से रहित को	नित्यानन्दस्य	नित्यतृप्त को
फलम्	फल	दक्षिणा	दक्षिणा
कुतः	कहां	कुतः	कहां

भावार्थः।

जो शरीरधारी है तिसी को भूख लगती है, तिसके भूखके हटाने के वास्ते उसको नैवेद्य दियाजाता है, परन्तु जो शरीर से रहित नित्यतृप्त है तिसको नैवेद्य का देना कहां बनता है, नैवेद्य वह ग्रहण करता है जिसको वासना होती है, ईश्वर वासनारहित है उस में वासना कहां, वासना से कर्म उत्पन्न होते हैं, कर्म से संस्कार उत्पन्न होते हैं, संस्कारों से फिर वासना उत्पन्न होती हैं, जैसे २ भोगकी जिस २ जीव को वासना उत्पन्न होती है वह जीव तिसी २ भोगकी प्राप्तिके लिये कर्मों को करता है, ईश्वर को किसी भी भोग के लिये वासना नहीं उत्पन्न होती है, क्योंकि उसके अन्तःकरण नहीं है, जीव में वासना है ईश्वर वासना से रहित है, इतनाही जीव ईश्वर का भेद है, वे दोष के भागी होते हैं जो ईश्वर में वासना आरोप करते हैं ॥ **प्रश्न** ॥ संसार में ऐसा देखने में आता है कि शरीर के भीतर जो चेतन है वही खाता है, फल को भोगता है, वही ताम्बूल वगैरा का स्वाद लेता है, वही नाचता है, वही नाचको देखता है, अर्थात् संपूर्ण व्यवहारों को चेतनही करता है, जड़शरीर में तो कोई भी व्यवहार नहीं होता है, तब आप कैसे कहते हैं कि ईश्वर नहीं खाता है, ॥ **उत्तर** ॥ चेतन दो प्रकार का है, एक तो सामान्य चेतन है, दूसरा विशेष चेतन है, सामान्य चेतन उसको कहते हैं जो सर्वत्र व्यापक है, निराकार, निरवयव है, और जो अन्तःकरणावच्छिन्न चेतन है वह विशेष चेतन है, उसी का नाम जीव चेतन है, जैसे दो प्रकार की अग्नि है, एक सामान्य अग्नि है, दूसरी विशेष है, जो अग्नि संपूर्ण काष्ठों वग़ैरा में है वह सामान्य अग्नि है, वह न किसी का

साधक है, न बाधक है, अर्थात् वह काष्ठों में रहकर काष्ठों को नहीं जलाता है, परन्तु जो जलती हुई विशेष अग्नि है, वह लकड़ियों को जला देती है, इसीतरह जो सामान्य चेतन है, वह किसी का भी साधक बाधक नहीं है, अर्थात् न खाता है, न पीता है, न चलता है, न फिरता है, न देखता है, न सुनता है, न सूंघता है, न रस लेता है, किन्तु असंग निर्लेप है, इसी का नाम ईश्वर है, और जो विशेष चेतन जीवात्मा है, वह शरीर में स्थित रहकर खाता है, पीता है, लेता है, देता है, देखता है, सुनता है, चलता है, फिरता है, अर्थात् सर्वव्यवहारों को करता है, ईश्वर चेतन कुछ भी नहीं करता है, और इसी से वह निष्काम है, निष्काम को भोग्यपदार्थ दियाहुआ कैसे पहुंचसक्ता है ॥ फिर व्यापक में ताम्बूल का खाना कहां बनता है और जो नित्य आनन्द तृप्त है तिसको दक्षिणा देना कहां बनता है, ईश्वर आप्तकामनावाला है, उसमें किसी प्रकार का भी व्यवहार खान पानादिकों का नहीं बनता है ॥ यद्यपि व्यवहारदृष्टि से शरीररूपी उपाधि करके युक्त जीव में खान पानादिक व्यवहार कहेजाते हैं, पर परमार्थदृष्टि से जीवात्मा में कोई व्यवहार नहीं बनता है, क्योंकि जीवात्मा भी ईश्वरात्मा की तरह असंग और निर्लेप है, और ऐसे लोक भी कहते हैं, मेरी बुद्धि ठिकाने नहीं है, मेरा मन ठिकाने नहीं है, ऐसा तो कोई भी नहीं कहता है कि मेरा आत्मा ठिकाने नहीं है, अलबत्ता ऐसा कहते हैं मेरे पांव में दरद है, मैं चल नहीं सक्ताहूं, मेरे कान में दरद है, मैं सुन नहीं सक्ता हूं, मेरे मुख में पीड़ा है, मैं खा नहीं सक्ता हूं, ऐसा तो कोई भी नहीं कहता है कि मेरेआत्मा में दरद है, इसलिये साबित होता है कि जीवात्मा

वास्तव से खाता पीता नहीं है, किन्तु प्राणेन्द्रिय खाते पीते हैं और जब जीवही में खाना पीना नहीं है तब ईश्वर में कैसे खाना पीना बनसक्ता है ॥ ५ ॥

मूलम्।

स्वयंप्रकाशमानस्य कुतोनीराजनोविधिः ॥
प्रदक्षिणाह्यनन्तस्य चाद्वितीयस्यकानतिः ॥ ६ ॥

पदच्छेदः।

स्वयंप्रकाशमानस्य कुतः नीराजनः विधिः प्रदक्षिणा हि अनन्तस्य च अद्वितीयस्य का नतिः ॥

अन्वयः।	पदार्थः।	अन्वयः।	पदार्थः।
स्वयंप्रकाशमानस्य	स्वयंप्रकाशमानको	प्रदक्षिणा	प्रदक्षिणा
नीराजनः	दीपकदेनेकी	कुतः	कहां
विधिः	विधि	च	और
कुतः	कहां	अद्वितीयस्य	द्वैत से रहित को
अनन्तस्य	अनन्त का	नतिः	नमस्कार
हि	निश्चयकरके	का	कहां

भावार्थः।

जो अन्धेरे में होता है उसके देखने के लिये दीपककी जरूरत है, मगर जो स्वतः प्रकाशमान है और जिसके प्रकाश करके सूर्य्य चन्द्र आदिक सब प्रकाशमान होते हैं उसको एक तुच्छ दीपक क्या प्रकाशकरसक्ता है, जो परिच्छिन्न एकदेशी होता है अर्थात् एकदेश में जो देहधारी रहता है उसी का कोई प्रदक्षिणा

करसक्ता है जिसका कहीं अन्त नहीं है तिसका प्रदक्षिणा कैसे होसक्ता है, जो द्वैत होता है अर्थात् अपने आत्मा से भिन्न है उसी को लोक नमस्कार करते हैं पर जो अपना आत्माही है उसको नमस्कार करना कहां बनता है, वह परिपूर्ण एक है, वही जीव है, वही ईश्वर है, वही ब्रह्म है, उपाधि के सम्बन्ध से उसके अनेक नाम हैं, उपाधि कल्पित है, याने जब वह हुई नहीं तब नाम रूप कहां और नमस्कार किसको ॥ ६ ॥

मूलम् ।

अन्तर्बहिश्चपूर्णस्य कथमुद्वासनंभवेत् ॥
इयमेवपरापूजा शम्भोःसत्यस्वरूपिणः ॥ ७ ॥
देहोदेवालयःप्रोक्तो जीवोदेवःसदाशिवः ॥
त्यजेदज्ञाननिर्माल्यं सोऽहंभावेनपूजयेत् ॥ ८ ॥

पदच्छेदः ।

अन्तः बहिः च पूर्णस्य कथम् उद्वासनम् भवेत् इयम् एव परापूजा शम्भोः सत्यस्वरूपिणः देहः देवालयः प्रोक्तः जीवः देवः सदाशिवः त्यजेत् अज्ञाननिर्माल्यम् सः अहम् भावेन पूजयेत् ॥

अन्वयः ।	पदार्थः ।	अन्वयः ।	पदार्थः ।
अन्तः	= शरीरकेभीतर	उद्वासनम्	= विसर्जन
च	= औरशरीर के	भवेत्	= होसक्ता है
बहिः	= बाहर जो	इयम्	= यही
पूर्णस्य	= पूर्णहै तिसका	एव	= निश्चय करके
कथम्	= किसप्रकार से		

सत्यस्वरूपिणः = सत्यस्वरूप
शम्भोः = कल्याणस्वरूपपरमेश्वर की
परापूजा = उत्कृष्ट पूजा
प्रोक्तः = कहीगईहैकि
देहः = शरीर जो है सोई
देवालयः = देवता का मंदिर है
च = और
जीवः=जीवात्मा जो है सोई तिसमें
सदाशिवः = सदाशिवरूप
देवः = देव है
अज्ञाननिर्माल्यम् = अज्ञानरूपी मल को
त्यजेत् = त्याग कर देवै और
सोऽहम् = सोहं
भावेन = भाव कर के अपने आत्माको
चिन्तयेत् = नित्यही चिन्तन करै

भावार्थः।

विसर्जन उसका होता है जो बाहर से चल कर आता है, जो पहिलेसेहीं भीतर बाहर सब जगह में एकरस पूर्ण होरहा है उसका विसर्जन कैसे होसक्ता है॥ **प्रश्न**॥ ईश्वर की भक्तिकरनी मनुष्यमात्र को उचित है, पर निराकार परमात्मा तो किसी इन्द्रिय का विषय नहीं है, तब उसकी भक्ति किस प्रकार से नहीं बनसक्ती है, और जो साकार होता है तिसी में सबका मन लगता है, इसवास्ते भगवान् की साकार मूर्तिको बनाना चाहिये क्योंकि उसमें आवाहन और विसर्जनादि कर्म बनसकता है और उसका

ध्यान भी होसक्ता है ॥ उत्तर ॥ संसार में चार प्रकार के पुरुष हैं, उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ, और महाकनिष्ठ, उनमें से उत्तम के लिये तो सोहं का जप करनाही ठीक है, मध्यम के लिये ॐकार का या गायत्रीमन्त्र का जप करना चित्त की शुद्धि के वास्ते उचित है, कनिष्ठ के लिये मूर्त्ति का पूजन करना चाहिये और चौथे जो अतिकनिष्ठ हैं अर्थात महान् मूर्ख हैं उनके लिये कोई पूजा शास्त्र में नहीं कहीगई है, वे अज्ञान के वशहोकर अनेक जीवों को देवी आदिकों के सामने मारकर मद्य के साथ उनके मांस का सेवन करते हैं, और इसी को ईश्वर की पूजा समझते हैं, लोक मूर्त्तिपूजा के वास्तविक तात्पर्य्य को नहीं जानते हैं कि मूर्त्तिपूजा क्यों वनाई गई है, और इसके वनाने का मतलव क्या है और किसके लिये वनाईगई है, निराकार परमात्मा तक किसी की बुद्धि नहीं पहुंचती है, क्योंकि वह किसी इन्द्रिय का भी विषय नहीं है, इसवास्ते उसके जानने विना चित्तकी स्थिरता नहीं होसक्ती है, चित्त किसी सुन्दर वस्तु के देखने में ठहर जाता है, इसलिये चित्त के ठहराने के वास्ते मूर्त्ति की पूजा वनाई गई है, क्योंकि विना चित्त के ठहरने के चित्त में चेतन का प्रतिविम्व साफ नहीं दीखता है, और विना चित्त के ठहरने के पुरुष को सुख नहीं मिलसक्ता है, इसलिये मूर्त्ति में चित्त के ठहराने का नामही मूर्त्तिपूजा है, मूर्त्तिपूजा का एक और भी अर्थ है, मूर्त्तेः पूजा मूर्त्तिपूजा, मूर्त्ति की पूजाही का नाम मूर्त्तिपूजा है, अर्थात मूर्त्तिमान् देहधारी जीवों की पूजा का नामही मूर्त्तिपूजा है, संसार में जितने ज्ञानवान् महात्मा और पण्डित हैं, उनका अन्न वस्त्रादिकों करके सत्कार करने का नामही मूर्त्तिपूजा है, माता

पिता के शरीरों की तन मन धन से सेवा करने का नामही मूर्त्तिपूजा है, और इसमें जो अनेक प्रमाण मिलते हैं सो दिखाते हैं, ॥ साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूताहि साधवः ॥ ते पुनन्ति बहु कालेन दर्शनादेव साधवः॥ साधुवों के दर्शन सेही पुण्य होता है, क्योंकि तीर्थरूपही साधु हैं, तीर्थादिक तो बहुत तप करने से पवित्र करते हैं, महात्मा दर्शनसेही पवित्र करदेते हैं॥ गङ्गा पापं शशी तापं दैन्यं कल्पतरुर्यथा ॥ पापं तापं तथा दैन्यं हन्ति साधुसमागमः ॥ गंगा पापको दूर करती हैं और चन्द्रमा शरीर के ताप को और कल्पवृक्ष पुरुष की दीनता को दूर कर देता है, अर्थात् इन तीनों के सेवन से एकही एक फल होता है, परन्तु महात्मा की मूर्त्ति की सेवा करने से अनेक फल प्राप्त होते हैं, इसवास्ते चेतन महात्मा की मूर्त्ति की सेवा का नामही मूर्त्तिपूजा है, ॥ जड़ मूर्त्तियों की पूजा का नाम मूर्त्ति-पूजा नहीं है, विचारमाला में भी कहा है॥ दोहा ॥ पारस में अरु सन्त में बड़ो अन्तरो जान। वह लोहा कंचन करै यह करै आप समान ॥ १ ॥ विधिवत यज्ञ करत सदा जो द्विज उत्तम गोत। साध निकट चल जातहि, सो फल पग पग होत॥ २ ॥ दया आदि जे धर्म सब, जप तप संयम दान। जो प्राप्ति इन सवन तैं, सो सतसंग प्रमान ॥ ३ ॥ माता पिताकी चेतन मूर्त्तियों की पूजा का नाम भी मूर्त्तिपूजा है, क्योंकि वह तुरन्त सेवाके फल को देदेते हैं, कैसाही पुत्र मूर्ख हो, विद्याहीन हो, तब भी माता पिता अपना सर्बस मरतीबार उसी कोही देते हैं, और जब पुत्र पर किसी तरह का कष्ट आकरके पड़ता है, तब तिस कष्ट में बड़ी सहायता करते हैं, यहां तक कि जान देने को भी

तैयार होजाते हैं, दशरथ आदिकों ने पुत्र के वियोग में अपने प्राण को भी त्याग करदिया है, माता पिता मेंही सब प्रकार के गुण भरे हैं, इस वास्ते उनकी मूर्त्ति की पूजा का नामही मूर्त्तिपूजा है॥ फिर जिससे कोई विद्या रूपी गुणकी प्राप्ति हो तिस विद्वान् आचार्य्य की प्रतिष्ठा करना, यथाशक्ति सहायता देना मूर्त्तिपूजा हैं, और रोगियों को औषधी देकरके उनके शरीरों को आरोग्य करना भी मूर्त्तिपूजा है, भूखों को अन्न, वस्त्र, जलादिक दे करके उनके शरीरों को आराम देने काही नाम मूर्त्तिपूजा है, इसीप्रकार जितने जीव हैं उनके ऊपर दया करना सब मूर्त्तिपूजन है, ऐसा पूजन ईश्वरपूजन हैं, क्योंकि परमात्मा उनके शरीरों में विशेष अंश से प्राप्त है, और विशेष अंश ब्रह्म का पूज्य है, समान अंश नहीं, जैसे समान अग्नि काष्ठादिक में स्थित है पर उसकी पूजा कोई नहीं करता है, जब वही अग्नि घृतादिक सामग्री पाकर प्रज्वलित होकर विशेष अंश को प्राप्त होती है, तब उसकी पूजा व मान सभी लोग करते हैं, यह जो मनुष्य का शरीर है, इसीका नाम देवमंदिर है, और इस शरीरके भीतर जो जीवात्मा है, वही सदा शिवरूप देव है, अज्ञानरूपी जो मल है सो तिस जीवात्मा के आगे आगया है, तिसको दूर करके ॥ सोहंभाव ॥ से उस जीवरूपी शिवका पूजन करे, ॥ **प्रश्न** ॥ नित्य शुद्ध चिद्रूप आत्मा में अज्ञानरूपी मल कैसे लगगई है॥ **उत्तर** ॥ जैसे जीवात्मा और ईश्वरात्मा दोनों अनादि हैं, तैसे अज्ञान और अज्ञान का सम्बन्ध जीवात्मा के साथ भी अनादि है, फरक केवल इतना है कि चेतन अनादि अनन्त हैं, अज्ञान अनादि सान्त है, याने अन्त होनेवाला है (अज्ञान अविद्या माया यह सब पर्याय शब्द

हैं)॥ अनादि अज्ञानरूपी मल के त्यागसेही इस जीवात्माको सुख मिलता है, विना उस के त्याग के कदापि सुख नहीं मिलता है, ॥ **प्रश्न** ॥ तिस अज्ञान का स्वरूप क्या है ॥ **उत्तर** ॥ अनात्मा में आत्मभ्रान्ति का नामही अज्ञान है, जड़ वस्तुवों में ईश्वरबुद्धि करनीहीका नाम अज्ञान है, देहादिकोंमें आत्मबुद्धि का नामही अज्ञान है, सो ऐसा लिखा भी है, ॥ आत्मा निष्कलोह्येको देहो बहुभिरावृतः ॥ तयोरैक्यं प्रपश्यन्ति किमज्ञानमतः परम्॥१॥ आत्मा निरवयव है, और एक है, शरीरादिकों करके आच्छादित है, उन दोनों की ऐक्यता करने का ही नाम अज्ञान है, कोई २ लोक कहदेते हैं कि जब ईश्वर सर्वव्यापक है तब पत्थर आदिक में भी ईश्वर है तिसके पूजने से भी ईश्वर की ही पूजा होसक्ती है, सो ऐसा उनका कथन ठीक नहीं है, क्योंकि जीव चेतन शरीर में तो रहता है, परन्तु शरीररूप वह नहीं है, क्योंकि शरीर के नाश होने से उसका नाश नहीं होता है, इसीतरह व्यापक ईश्वर भी समान रूप से पत्थरों में रहता तो है, परन्तु वह पत्थररूप नहीं है, पत्थर से भिन्न है, पत्थर जड़ नाशी है, वह चेतन है और नित्य है, इसलिये ज्ञानियों को चेतन ब्रह्म का ध्यान जो सर्वत्र व्यापक है करना चाहिये ॥परोक्षानुभूतिः॥ आत्मा ज्ञानमयः पुण्यो देहो मांसमयोऽशुचिः ॥ तयोरैक्यं प्रपश्यन्ति किमज्ञानमतः परम् ॥ १ ॥ आत्मा ज्ञानस्वरूप है, पवित्र है, शरीर मांसमय और अपवित्र है, उनदोनों की ऐक्यता करनाही अज्ञानहै ॥ **प्रश्न** ॥ जब जीव सदा शिवरूप है, तब वह फिर सुखी दुखी क्यों होता है, और रागद्वेष वाला क्यों होता है, और जन्म मरनवाला क्यों होता है, ॥ **उत्तर** ॥ पूर्वोक्त अनादि अज्ञान के सम्बन्ध सेही जीव सुखी

दुखी होता है, उसी अज्ञान के सम्बन्ध से छूटने के वास्ते शास्त्र॰
कारों ने अनेक प्रकार के साधनों का विधान किया है, वास्तव से
जीव सदा आनन्दरूप है॥ **प्रश्न** ॥ अज्ञान की निवृत्ति के वास्ते
तीर्थयात्रा और तीर्थ का सेवन भी एक साधन कहा है, इसी वास्ते
ऋषि मुनि सब तीर्थोंपर रहते थे, और अब भी तीर्थों को स्वर्ग
पाने या मुक्त होने की इच्छा से लोक जाते हैं ॥ **उत्तर** ॥ तीर्थ
दो प्रकार का है, एक तो बाह्य तीर्थ गंगा आदिक हैं, दूसरा अन्तर
तीर्थ जहां शिवरूप जीव रहता है, इन दोनों में से बाह्यतीर्थ तो
कनिष्ठाधिकारियों के वास्ते हैं, और अंतर तीर्थ उत्तमाधिकारियों
के वास्ते हैं, इसी कारण केवल बाह्य तीर्थों के सेवन से अज्ञान॰
रूपी मल दूर नहीं होता है, देवी भागवत में कहा है ॥ तीर्थवासी
महापापी भवेत्तत्रान्यवञ्चनात् ॥ तत्रैवाचरितंपापमानन्त्याय
प्रकल्पते ॥ १ ॥ तीर्थों में द्रव्य संचयन के निमत्त वास करनेवाले
महापापी होते हैं, क्योंकि तीर्थों में दूसरों के द्रव्यों को वंचन करते
हैं ॥ १ ॥ यथेन्द्रदारुणंपक्वं मिष्टंनैवोपजायते ॥ भावदुष्टस्तथा तीर्थे
कोटिस्नातोनशुद्ध्यति ॥२॥ जैसे कड़वी तूंबी पकीहुई भी कदापि
मीठी नहीं होती है, तैसे जिसका अन्तःकरण दुष्ट है वह करोड़ों
तीर्थोंपर भी स्नान करै पर वह शुद्ध नहीं होसक्ता है॥ २ ॥लोभो
मोहस्तथातृष्णा द्वेषोरागस्तथामदः ॥ असूयेर्ष्याऽक्षमाशान्तिःपा-
पान्येतानिनारद ॥ ननिर्गतानिदेहात्तु तावत्पापयुतोनरः ॥ ३ ॥
कृतेतीर्थेयदैतानि देहान्ननिर्गतानिचेत् ॥ निष्फलःश्रमएवैकः
कर्षकस्ययथा तथा ॥ ४ ॥ लोभ, मोह, तृष्णा, राग, द्वेष, मद, ईर्षा
अक्षमा, अशान्ति, हे नारद यह सब पाप हैं, जबतक ये शरीर से
नहीं निकलते हैं, तबतंक पुरुष पाप करके युक्तही रहता है, ॥ ३ ॥

तीर्थ के करने पर भी जबतक यह पाप शरीर से नहीं निकलता है, तबतक पुरुष पाप करके शुक्रही रहता है, केवल तीर्थों में जाने से उसको कोई फल नहीं होता है ॥ ४ ॥ भ्रमन्सर्वेषुतीर्थेषु स्नात्वा स्नात्वा पुनःपुनः ॥ निर्मलं न मनो यावत् तावत्सर्वनिरर्थकम् ॥५॥ संपूर्ण तीर्थों में केवल भ्रमण करना फलदायक नहीं है, जबतक मन न शुद्ध हो ॥ ५ ॥ **प्रश्न** ॥ संपूर्ण वस्त्रादिकों को त्यागकरके व नग्न होकरके विचरने से और पदार्थों के त्याग से तो अज्ञान की निवृत्ति होजाती होगी ॥ **उत्तर** ॥ पदार्थों व वस्त्रादिकों के त्याग करदेने से अज्ञानकी निवृत्ति नहीं होती है, देखो करोड़ों पशु पक्षी नग्न फिरते हैं, पर क्या उनके अज्ञानकी निवृत्ति होजाती है ॥ **प्रश्न** ॥ अज्ञान कौन साधन करके दूर होता है ॥ **उत्तर** ॥ अन्धकार हाथ जोड़ने और नमस्कारादिकों के करने से कदापि दूर नहीं होता है, किन्तु प्रकाश के आने से, अन्धकार आपसे आपही दूर होजाता है, क्योंकि तमका विरोधी प्रकाश है, इसी प्रकार अज्ञान का विरोधी आत्मज्ञान है, इसवास्ते आत्मज्ञान करके ही अज्ञान की निवृत्ति होती है, सो आत्मज्ञान ब्रह्मवित् गुरुकी सेवा से प्राप्त होता है, तथाच श्रुतिः ॥ सगुरुमेवाभिगच्छेच्छ्रोत्रियंब्रह्मनिष्ठम् ॥ साधनचतुष्टयसंपन्न अधिकारी ब्रह्मनेष्ठि ब्रह्मश्रोत्री गुरु के पास आत्मज्ञान की प्राप्ति के वास्ते जावै, परन्तु खाली हाथ न जावै, किन्तु हाथ में कुछ लेकरके जावै, और अपने चित्त के संदेहों को प्रगट करै कि यह जगत् क्या है, और ईश्वर जीव का स्वरूप क्या है, जीव को बंध कैसे हुआ, और उसकी निवृत्ति कैसे होवैगी, इस तरह के अपने चित्तके संदेहों को उस ब्रह्मवित गुरु के आगे प्रगट करै, यदि गुरु ब्रह्मनेष्ठी होगा, और

ब्रह्मश्रोत्री नहीं होवैगा, अर्थात् वेद शास्त्र का जाननेवाला यदि नहीं होवैगा, तब शिष्य के संदेहों को दूर नहीं करसकैगा, और जो केवल ब्रह्मश्रोत्रीही होगा, पर ब्रह्मनेष्ठी नहीं होवैगा, तब तिसके उपदेश का असर शिष्य के हृदय में नहीं होगा, इसवास्ते ब्रह्मनेष्ठि भी होना चाहिये, सो ऐसे गुरु के उपदेश से अज्ञान की निवृत्ति होजाती है, पर शिष्य भी चारो साधनों करके युक्त हो, क्योंकि जो चारो साधनों करके युक्त शिष्य होगा तिसीका अज्ञान ब्रह्मनेष्ठि ब्रह्मश्रोत्री गुरुके उपदेश से दूर होगा, जो चार साधनों से रहित है, उसका अज्ञान किसी प्रकार से दूर नहीं होगा, विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति, और मुमुक्षुता में चार साधन हैं, नित्य और अनित्य वस्तु के विचार का नाम विवेक है, अर्थात् नित्य क्या है और अनित्य क्या है, नित्य वस्तु चेतन है, उससे भिन्न संपूर्ण जगत् अनित्य है, अर्थात् मिथ्या है, इस लोक के भोग जो स्त्री पुत्रादिक हैं, इन में दुखबुद्धि होनी अर्थात् इनकी कामना से मन का हटजाना इसीका नाम वैराग्य है, ॥ और शम दम उपरति तितिक्षा श्रद्धा समाधान इन छहों का नाम समाधि षट्सम्पत्ति है, अन्तर मनादिकों के रोकने का नाम शम है, बाहर के इन्द्रियों के रोकने का नाम दम है, संसार से उपराम होजाने का नाम उपरति है, प्रारब्ध भोग्य से सुख अथवा दुख प्राप्त होजावै तिसको सहन करलेने का नाम तितिक्षा है, ब्रह्मवित् गुरु के वाक्यों में और वेदवाक्यों में जो विश्वास है, इसीका नाम श्रद्धा है, चित्त के एकाग्रता करने का नाम समाधान है, अर्थात् ध्यान करने का नामही समाधान है, इन्हीं छहों का नाम समाधि षट्सम्पत्ति है, किसी प्रकार से मेरी मुक्ति होजावै, ऐसी दृढ़

इच्छा का नामही मुमुक्षुता है, इन्हीं चारो साधनों करके युक्त का नाम अधिकारी है, सो साधनचतुष्टयसंपन्न अधिकारी का अज्ञान ब्रह्मवित् गुरु के उपदेश से दूर होजाता है, दूसरे अनधिकारी का अज्ञान और किसी उपाय करके दूर नहीं होता है, ॥ **प्रश्न** ॥ जब अज्ञान नष्ट होजाता है तब पुरुष को किस प्रकार का ज्ञान होता हैं, ॥ **उत्तर** ॥ जैसे अज्ञानावस्था में पुरुष अपने को पाप आत्मा, व पुण्य आत्मा, कर्ता भोक्ता, सुखी दुखी मानता था वैसा ज्ञानदशा में नहीं मानता है, बल्कि वह अनुभव करता है कि न मैं पुण्य पाप वाला हूं, और न मैं कर्ता भोक्ता हूं, न मैं सुखी हूं, न दुखी हूं, किन्तु सुख दुखादिकों से रहित सत्य चिद् आनंदरूप ब्रह्म हूं, जब ऐसा जिसको दृढ़ निश्चय है; और संसार के भोगों की वासनासे जिसका मन दूर होगया है, वही ज्ञानी और जीवन्मुक्त कहा जाता है, सो ऐसी अवस्था अज्ञानरूपी मल के दूर होने सेही प्राप्त होती है, और तबही "सोहं" रूपी अजपा जाप अहर्निश उस पुरुष के हृदयाकाश में हुआ करता है ॥ ८ ॥

मूलम्।

तुभ्यंमह्यमनन्ताय मह्यंतुभ्यंशिवात्मने ॥ नमो देवाधिदेवाय परायपरमात्मने ॥ ९ ॥

पदच्छेदः।

तुभ्यम् मह्यम् अनन्ताय मह्यम् तुभ्यम् शिवात्मने नमः देवाधिदेवाय पराय परमात्मने ॥

अन्वयः।	पदार्थः।	अन्वयः।	पदार्थः।
तुभ्यम्=तुभ्क		अनन्ताय=अनन्तरूप के प्रति	
मह्यम्=मुभ्क			

च=और	च=और
मह्यम्=मुझ	देवाधि } = देवतों के भी
तुभ्यम्=तुझ	देवाय } = देवता
शिवात्मने= { कल्याण रूप के प्रति	पराय=सब से सूक्ष्म
नमः=नमस्कार हो	परमात्मने=परमात्मा के प्रति
शिवात्मने=कल्याण रूप	नमः=नमस्कार होवे

भावार्थः ।

जैसे परमात्मा अनन्त रूप है, अर्थात् देशकृत, वस्तुकृत, कालकृत, परिच्छेद से रहित है, तैसे जीव भी तीनों परिच्छेद से रहित है, जीव के साथ ईश्वर की उपाधिकृत्य भेद है, वास्तव भेद नहीं है, जैसे ईश्वरात्मा निराकार निरवयव है, तैसे जीवात्मा भी निराकार निरवयव है, और निराकार पदार्थ संसार भर में एकही रहसक्ता है, अनेक नहीं, इस में कोई भी दृष्टांत नहीं मिलता है जो एक देश में अनेक निराकार वस्तु हो, इस वास्ते ब्रह्मांड भर में एकही निराकार चेतन है, दूसरा नहीं, और अन्तःकरणरूपी उपाधियों के भेद करके जीवों में परस्पर भेद है, और जीव का ईश्वर चेतन के साथ भेद देखनेही मात्र है, वास्तव से जीव ईश्वर का भेद नहीं है, और परस्पर जीवों का भी भेद नहीं है ॥ सब में एकही चेतन है ॥ **प्रश्न** ॥ जब सब शरीरों में एकही चेतन है तब फिर एक के सुखी दुखी होने से सभी जीवोंको सुखी दुखी होना चाहिये, पर ऐसा तो नहीं देखते हैं, इसी से सिद्ध होता है कि जीव नाना हैं, और सब शरीरों में चेतन भी भिन्न २ हैं, एकही चेतन सब में नहीं है ॥ **उत्तर** ॥ जैसे एकही शरीर में चेतन सब जगह है, और

हाथ पांव शिर आदिक अनेक अवयव हैं, पर हाथमें दरदहोनेसे पांव में दरद नहीं होता है, पांवमें दरद होने से शिरमें दरद नहीं होताहै, शिरमें दरद होने से पेट में दरद नहीं होता है, कान में दरद होने से नाक में दरद नहीं होता है, नाक में दरद होने से आंख में दरद नहीं होता है, तैसेही सब जीवों के शरीरों में भी एकही चेतन व्यापक है, पर एक के सुखी या दुखी होनेसे दूसरा सुखी या दुखी नहीं होसक्ता है, जैसे अनेक घटों में जल भरा है, और सब घटों में सूर्य्य का प्रतिबिंब बराबरही पड़ता है, तब भी जिस घट में कंप होता है तिसी का जल हिलता है, और उसके साथ प्रतिबिंब भी हिलता है, सब घटों का जल और प्रतिबिंब तो नहीं हिलता है इसी तरह शरीररूपी सब घट हैं, अन्तःकरणरूपी उनमें जल है प्रतिबिंबरूपी जीव हैं, जिस अन्तःकरण में क्रिया होती है, उसी में क्रिया का फल सुख या दुख जीव को होता है, दूसरेको नहीं होता है, इस रीति से भी चेतन सब शरीरों में एक भी है, तब भी एक को सुख दुख होने से सब को सुख दुख नहीं होता है, ॥ **प्रश्न** ॥ जीव का स्वरूप क्या है, और ईश्वर का स्वरूप क्या है ॥ **उत्तर** ॥ अविद्या और अविद्या में चेतन का प्रतिबिंब और अविद्या का अधिष्ठान चेतन इन तीनों के सम्बंध का नाम जीव है, और माया और माया में चेतन का प्रतिबिंब और अधिष्ठान चेतन इन तीनों के सम्बंध का नाम ईश्वर है, सोई ईश्वर जगत् का अभिन्न निमित्त उपादान कारण है, जैसे लूकातंतु नामवाली एक मकड़ी होती है, वह अपने मुख से तंतुवों को निकाल करके फिर उनको अपने मुख में ही लय भी करलेती है, इसी प्रकार वह ईश्वर भी अपने सेही जगत् को सृष्टिकाल में उत्पन्न करके फिर प्रलयकाल में

अपने में ही जगत् को लय भी करलेता है, इसी वास्ते ईश्वरही जगत् का उपादान कारण और निमित्त कारण भी कहा जाता है, अर्थात् जगत् का अभिन्न निमित्त उपादान कारण ईश्वरही है, ॥ सृष्टि दो प्रकार ही है, एक जीवकृत दूसरी ईश्वरकृत, जीवकृत सृष्टि किसी को भी सुखदाई नहीं है, किंतु सबको दुखदाई है, और ईश्वरकृत सृष्टि किसी को भी दुखदाई नहीं है, किन्तु सब को सुखदाई है, इसी को अब दिखाते हैं, ईश्वररचित पृथिवी जल तेज वायु और आकाश ये पांच भूत हैं, और इन से ईश्वररचित पर्वत वृक्ष पशु पक्षी आदिक सब जीवों के शरीर हैं, सो ये सब किसी को भी दुखदाई नहीं हैं, पृथिवी सब लोकों को बैठने के लिये और मकान बनाने के लिये जगह देती है, फिर पृथिवी मनुष्यों के लिये अन्नों को और अनेक प्रकार के मेवों को उत्पन्न करती है, पशुवों के लिये घास को उत्पन्न करती है, यदि पृथिवी न होती तो मनुष्यादिक किसपर रहते, और क्या खाते, इसी से पृथिवी में अनेक गुण भरे पड़े हैं, इसी तरह जल में भी अनेक गुण हैं, और वह सब जीवों को सुखदाई हैं, जलको पान करके सर्व प्राणी जीते हैं, जल के बिना कोई भी एक क्षणमात्र जी नहीं सक्ता है, फिर जल करकेही संपूर्ण मनुष्यों के शरीरों की शुद्धता होती है, और जल करकेही वस्त्रादिकों की भी सफाई होती है, और मकानों की भी सफाई होती है, और सब खेतियें भी जल करकेही पकती हैं, और मनुष्य पशु पक्षी आदिक सब जीव भी जल करकेही जीते हैं, इस वास्ते ईश्वररचित जल सब को सुख देता है, किसी को भी दुख नहीं देता है, ऐसेही वायु भी ईश्वररचित सर्व प्राणियों को सुखही देता है, वायुही सब प्राणियों

का जीवन है, एक क्षणमात्र भी कोई जीव वायु से विना किसी प्रकार से जी नहीं सक्ता है, वायु वस्त्रों को सुखाता है, खेतियों को पकाता है, और अनेक प्रकार का उपकार जीवों पर करता है, इस वास्ते ईश्वररचित वायु भी किसी को दुख का हेतु नहीं है, किन्तु सब को सुख का ही कारण है, इसी तरह ईश्वररचित तेज भी किसी को दुख का हेतु नहीं है, किन्तु सब को सुख का ही कारण है, क्योंकि अग्नि से सब लोक रसोई को बनाते हैं, जाड़े में तापते हैं, तेज में वस्त्रों को सुखाते हैं, धूप से दुर्गंधी दूर होती है, तेज ही शरीरों के भीतर पेट में अन्न को पचाती है, इस तरह के अनेक उपकार तेज जीवों पर करके सुख ही देता है, इसीतरह आकाश भी सब को सुख का ही जनक है, सब के चलने फिरने का और मकान वगैरा के बनाने का अवकाश आकाश ही देता है, इसी से सिद्ध होता है कि ईश्वर के बनाये हुये पांचों भूत किसी को भी दुख के जनक नहीं हैं, किन्तु सब के सुख के ही जनक हैं, फिर जितने ईश्वररचित पर्वत हैं, इन से भी लोकों को अनेक प्रकार की लकड़ियों का और मकानों के बनाने के वास्ते अनेक प्रकार की पत्थरों की शिलों का लाभ होता है, और अनेक प्रकार की खानें भी पहाड़ों में मिलती हैं, और अनेक नदियें भी पहाड़ों से ही उतर करके मनुष्यों को सुख देती हैं, ॥ इसी तरह हजारों मेवों वगैरा के दरख्त भी ईश्वररचित सब मनुष्यों को सुख ही देते हैं, तात्पर्य्य यह है कि ईश्वर की बनाई हुई जितनी सृष्टि है, वे सब जीवों को सुख ही देती हैं, किसी को भी दुख नहीं देती हैं, और जीवरचित जितनी सृष्टि है, वे सब को दुख देती हैं, क्योंकि जीवही अपने मन करके किसी में शत्रु

और किसी में मित्र, किसी में पिता, किसी में माता, किसी में पुत्र, किसी में मामा, वगैरा की कल्पना करके महान् दुखी होता है, राग द्वेषवाला बन करके दुख को पाता है, और स्त्री पुत्रादिकों में ममता को करके मोहके वश में होकरके उनके दुखी होने से अपने को दुखी मानता है, उनके मरने से अपने में मरना मानता है, इसतरह की जीव की जितनी सृष्टि है वह सब दुख काही कारण है, ईश्वररचित सृष्टि किसी को भी दुख का जनक नहीं है, किंतु सब जीवों को सुख काही जनक है, सो जीव अपने अज्ञान करकेही अपनी सृष्टि को उत्पन्न करता है, अज्ञान के नाश होने से जीव की सृष्टि का भी नाश होजाता है, जीव की सृष्टि के नाश होनेपर जीव भी केवल आनन्दरूप होकर ईश्वर चेतन के साथ अभेद को प्राप्त होजाता है, और तभी जीव जन्ममरणरूपी बन्ध से छूटजाता है, और जीव ईश्वर का भेद नहीं रहता है, क्योंकि निराकार चेतन का भेद किसीप्रकार से नहीं बनता है, वास्तव से तीनों कालों में किसीतरह से भी जीव ईश्वर का और परस्पर चेतन जीवों का भेद नहीं है, और न ज्ञानवान् की दृष्टि में भेद रहता है, इसीपर कहा है तुम्हारे प्रति और हमारे प्रति नमस्कार होवे, अर्थात् जो तुम हो सो हम हैं, और जो हम हैं, सो तुम हो तुम्हारा, हमारा भेद नहीं है ॥ ९ ॥

मूलम् ।

योगीदेहाभिमानीस्याद्रोगीकर्मणितत्परः ॥ ज्ञानीमोक्षाभिमान्येव तत्त्वज्ञेनाभिमानता ॥ १० ॥

पदच्छेदः ।

योगी देहाभिमानी स्यात् रोगी कर्मणि तत्परः
ज्ञानी मोक्षाभिमानी एव तत्त्वज्ञे न अभिमानता ॥

अन्वयः ।	पदार्थः ।	अन्वयः ।	पदार्थः ।
योगी	=हठयोगी	ज्ञानी	=वाचक ज्ञानी
देहाभिमानी	=शरीर का अभिमानी	मोक्षाभिमानी	=मोक्ष का अभिमानी है
स्यात्	=होता है	परन्तु	=परन्तु
रोगी	=रोगी याने कामना रोगकरके ग्रसित जो है वह	तत्त्वज्ञे	=तत्त्ववेत्ताके प्रति
कर्मणि	=कर्म करने में	एव	=निश्चयकरके
तत्परः	=लगा रहता है	न अभिमानता	=किसीतरह का भी अभिमान नहीं है

भावार्थः ।

जो नेती धौती आदिक अनेक क्रियों को करता है वह लोक में योगी कहा जाता है, उसी हठयोग क्रियों के करनेवाले योगी को अपने शरीर का अभिमान होता है, क्योंकि वह शरीर केही हलके और भारी करने में रात्रि दिन लगा रहता है, और नेती धौती को करके नित्यही शरीर के भीतर के मलादिकों को धोता रहता है, यदि उसको शरीर में अध्यास न होता तो इस मैले काम को वह नित्य क्यों करता रहता, जिसका शरीर में अधिक अध्यास होता है, वही इस झगड़े में रात्रि दिन लगा रहता है, और न उसका अज्ञान दूर होता है, क्योंकि अज्ञान का कार्य

देह का अभ्यास उस में बैठा है, जिसका अज्ञान दूर होजाता है, उसका देह में अभ्यास भी कम होजाता है, और शरीर को वह मिथ्या जानता है, अपने आत्मविचार में लगा रहता है, ॥ **प्रश्न** ॥ योगी लोग कहते हैं, योगाभ्यासही अज्ञान का नाशक है, और विना योगाभ्यास के ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती है, तव फिर आप योग का खण्डन क्यों करते हैं॥ **उत्तर** ॥ इस वार्ता को पूर्व दिखादिया है, कि विना आत्मज्ञान के अज्ञान का नाश नहीं होता है, राजयोग अन्तःकरण की शुद्धि का कारण है, और परंपरा करके आत्मज्ञान का साधन है, साक्षात् साधन नहीं है, इसके करने में विघ्न वहुत होते हैं, और इस समय में इस विद्या का पूरा २ जाननेवाला कोई नहीं मिलता है, और कहा भी है ॥ योगी देहाभिमानी स्यात् ॥ योगी को देह का अभिमान अधिक होता है, और रोगी को कर्मों के करने में अभिमान होता है, अपने शरीर के रोग के हटाने के वास्ते वह रात्रि दिन कर्मों कोही करता रहता है, ताकि मेरे रोग की निवृत्ति होजावे, और वाच्यज्ञानी जो है, सो मोक्ष का अभिमानी है, वह मोक्ष का अभिमानी होता है, और समुझता है कि मैं मुक्त होजाऊंगा और सब जीव बन्ध मेंही रहेंगे, और जो तत्त्वज्ञानी है, अर्थात् जिसने यथार्थ आत्मवस्तु को जानलिया है, उसको किसी तरह का भी अभिमान नहीं होता है, क्योंकि उसकी दृष्टि में सिवाय एक आत्मा के दूसरा कोई नहीं है, और अभिमान जो होता है, सो भेद को लेकरके होता है, क्योंकि जब दूसरे को अपने से न्यून देखता है, तभी तिसको बड़ेपने का अभिमान होता है, जब दूसरा कोई उसकी दृष्टि में नहीं है,

तब उसको अभिमान भी किसी प्रकार से नहीं होसक्ता है, इसी पर शंकराचार्य्यजी ने कहा है, तत्त्वज्ञ में अभिमान नहीं रहता है ॥ **प्रश्न** ॥ वेदान्त के मतमें अज्ञान एक है, जब किसी एक विद्वान् का अज्ञान ज्ञान करके नाश होगया, तब तो फिर संसार का भी अभाव होजाना चाहिये, क्योंकि जिसका कारण अज्ञान है उसके नाश से कार्य्य का भी नाशही होजाता है ॥ **उत्तर** ॥ अज्ञान यद्यपि एक है, तथापि उसके अंश अनेक हैं वे अंश अन्तःकरण हैं, जिसके अन्तःकरण में ब्रह्माकार वृत्ति उत्पन्न होती है, उसीके अन्तःकरण का नाश होजाता है, वहीं मुक्त होजाता है, बाकी के बने रहते हैं, उनका संसार भी बना रहता है, उनकी मानसी सृष्टि भी बनी रहती है, जिसका अज्ञान नष्ट होजाता है, उसीकी मानसी सृष्टिभी नष्ट होजाती है, उसका संसार भी नहीं रहता है, वही मुक्त होजाता है, ॥

प्रश्न ॥ द्वैत तो अनादि चला आताहै, और इसी तरह चला जावेगा, क्योंकि लाखों ज्ञानियोंके मुक्त होने पर भी इसका प्रवाह नहीं टूटा है, और न टूटैगा, तब अद्वैत कैसे सिद्ध होसक्ता है, ॥ **उत्तर** ॥ जो मुक्त होजाता है, उसको संसार नहीं रहताहै, केवल अद्वैत चेतनही चेतन रहजाता है, उस अवस्था में वह अद्वैतही होता है, और मुक्त होने से पहले सब के लिये द्वैत बनाही है, मुक्त होजाने के पीछे फिर द्वैत नहीं रहता है, और जितना अभिमान होता है, सो द्वैत काल मेंही होता है, अद्वैत होजानेपर नहीं रहता है, ॥ १० ॥

मूलम् ।

किंकरोमिकगच्छामिकिंगृह्णामित्यजामिकिम् ।

आत्मनापूरितंसर्वं महाकल्पाम्बुनासदा ॥ ११ ॥

पदच्छेदः ।

किम् करोमि क्व गच्छामि किम् गृह्णामि त्यजामि किम् आत्मना पूरितम् सर्वम् महाकल्पाम्बुना सदा ॥

अन्वयः ।	पदार्थः ।	अन्वयः ।	पदार्थः ।
किम्	क्या	त्यजामि	त्याग करूं
करोमि	करूं मैं	आत्मना	आत्म करकेही
क्व	कहां	सर्वम्	संपूर्ण ब्रह्मांड
गच्छामि	जाऊं मैं	महाकल्पाम्बुना	महाप्रलय के समुद्रकी तरह
किम्	क्या	सदा	सदैव काल
गृह्णामि	ग्रहण करूं	पूरितम्	भराहुआ है
किम्	क्या		

भावार्थः ।

ज्ञानवान् इस श्लोक में अपने अनुभव को कहता है ॥ अब मैं क्या करूं क्योंकि जो कुछ कर्तव्य होता है सो अज्ञानकाल में ही होता है, आत्मज्ञान की प्राप्ति के अनंतर कुछ भी कर्तव्य बाकी नहीं रहता है, इसी वार्त्ता को परोक्षानुभूतिमें कहाहै,॥ ज्ञानामृतेन तृप्तस्य कृतकृत्यस्य योगिनः ॥ नैवास्ति किञ्चित्कर्तव्यमस्ति चेन्न स तत्त्ववित् ॥ १ ॥ ज्ञानरूपी अमृत करके जो तृप्त है, और जो कुछ करना था सो जिसने करलिया है, ऐसा जो योगी है, तिस को बाकी कुछ भी कर्तव्य नहीं है, यदि अपने को कर्तव्य मानै तो वह तत्त्ववेत्ता नहीं है,॥ १ ॥ यः पश्येत् सर्वगं शान्तं

मानन्दात्मानमद्वयम् ॥ न तेन किञ्चित्कर्तव्यमस्ति चेन्न स तत्त्ववित् ॥ २॥ जो विद्वान् सर्वगत शान्तरूप द्वैत से रहित आत्माको देखता है, उस विद्वान् को कुछ भी कर्तव्य बाकी नहीं रहता है, यदि वह अपने में कर्तव्य को माने तब वह तत्त्ववेता भी नहीं है, ॥ २ ॥ गीता में भी कहा है, ॥ यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ॥ आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥ ३ ॥ जिस की कि आत्मा मेंही प्रीति है, और अपने आत्मा मेंही संतुष्ट है और आत्मानंद करकेही तृप्त है, तिसका कोई भी कर्तव्य बाकी नहीं रहता है, ॥ ३ ॥ श्रुतिः ॥ आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पूरुषः ॥ किमिच्छन् कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत् ॥ ४ ॥ जब पुरुष ने जानलिया कि मेरा आत्मा ईश्वरात्मा से भिन्न नहीं है, तब फिर वह किसकी इच्छा को करता हुआ शरीर को तपावे, क्योंकि वह इच्छारहित है, इस वास्ते वह शरीर को नहीं तपाता है, और न उसको कुछ करना बाकी रहता है, इसीपर कहा है ॥ किं करोमि ॥ अब मैं क्या करूं अर्थात् कुछ भी करना अब मेरे को बाकी नहीं रहा है ॥ क गच्छामि ॥ अब कहां जाऊं अर्थात् अब जाना भी कहीं नहीं बनता है, क्योंकि जिसको किसी देश के देखने की या किसी तीर्थ के करने की इच्छा होती है वह एक देश से दूसरे देश को जाता है, ॥ सो ज्ञानवान् तत्त्वज्ञ को किसी भी देश के देखने की और किसी भी तीर्थ के करने की इच्छा नहीं रहती है, इसी वास्ते तत्त्वज्ञ कहता है, कहां जाऊं, फिर तत्त्वज्ञ को ग्रहण करना और त्याग करना भी कुछ बाकी नहीं रहता है, क्योंकि जोकि सत्यरूप आत्मा था तिसका तो उसने ग्रहण करलिया और असत्यरूप विषयवासना का उसने

त्याग करदिया, फिर उसको कुछ भी ग्रहण करना और त्याग करना बाकी नहीं रहता है, क्योंकि चेतन आत्मा करकेही उस को संपूर्ण जगत पूर्ण हुवा २ सर्वत्र दिखाता है, जैसे महाप्रलय-काल में संपूर्ण पृथिवी जल करके पूर्ण होजाती है तैसे, जब विद्वान् की दृष्टि में सर्वत्र एकही चेतन आत्मा दिखाई देता है, तब उसकी दृष्टि में ग्रहण त्याग आना जाना खाना पीना वगैरा कुछ भी नहीं रहता है. ॥ **प्रश्न** ॥ जितने ज्ञानवान् हुये हैं वे सब खान पानादि और आना जाना आदि व्यवहार को करते रहे हैं, तब फिर आप कैसे कहते हैं कि विद्वान् कुछ भी नहीं करता है ॥ **उत्तर** ॥ विद्वान् अपने को असंग चिद्रूप मानता है, और आने जाने को वह शरीर का धर्म मानता है. और देखना सुनना खाना पीना आदिक सब वह इन्द्रियों का धर्म मानता है, अपने में कुछ नहीं मानता है, और दूसरों करके आरोप किये हुये धर्मों का फल दूसरे को नहीं होता है, ॥ ११ ॥

ओं शान्तिः ओं शान्तिः ओं शान्तिः ॥

इति श्रीपरापूजास्तोत्रसुबोधिनीनामकाटीकासमाप्ता ॥

विज्ञापन ॥

इस ग्रन्थ में जीवात्मा और परमात्मा जो एक रूप है उसकी पूजा का वर्णनहै. इसपर जो टीका लिखीगई है वह आनन्द का एक सागर है, उस में वेदान्त वाक्य के अर्थोंकी लहर लहरा रही है जो मुमुक्षु उसको पढ़ता है उसके हृदय में आनन्द ऐसे उछलने लगता है जैसे पूर्णमासी के चन्द्रमा को देख करके समुद्र का जल ऊपर को आनन्द के मारे उछलने लगता है, और पश्चात् पढ़ने या सुनने के उसका चित्त ब्रह्मकी ओर ऐसा फड़कताहै जैसे चलेजातेहुये पुरुष के हस्त में पताका में लगेहुये कपड़े का फरहरा पीछे की ओर फरका करता है, या जैसे रेल में चलेजाते हुये यात्रिक का मन अपने घरके ओर लगा रहता है, इसकी टीका के बनाने में स्वामी परमानन्दजी ने विशेष सहायता दी है।